3. रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं दरबारी संस्कृति

युगीन साहित्य की गतिविधि तत्कालीन परिस्थितियों से परिचालित होती है, अतः रीतिकालीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने से पूर्व इस काल की विभिन्न परिस्थितियों का विवेचन करना आवश्यक है। रीतिकाल की समय-सीमा संवत् 1700 विक्रमी से 1900 विक्रमी तक मानी गयी है। 200 वर्षों की इस दीर्घ कालावधि में रचित रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में ही देखी जानी चाहिए। अतः रीतिकालीन प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में हमें इस काल की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा कर लेना चाहिए।

(1) राजनीतिक परिस्थितियाँ—रीतिकाल मुगलों की सत्ता के चरम वैभव का काल है। मुगल साम्राज्य का चरम उत्कर्ष, उत्तरोत्तर ह्रास और फिर पतन भी इसी काल में हुआ। शाहजहाँ के शासन-काल में रीतियुग का प्रारम्भ हुआ। राजदरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। राजा और सामंत अपने दरबारों में गुणीजनों, कवियों, कलाकारों को प्रश्रय देते थे। शासकों में आत्म-प्रशंसा का मोह एवं शृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण हो चुका था उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामंतों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर एवं गोलकुण्डा तक फैल गया था। शाहजहाँ के उपरांत औरंगजेब मुगल-शासक बना, जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसका व्यक्तित्व रागात्मक तत्वों से रहित था और साहित्य, संगीत, कला के प्रति उसे कोई रुचि नहीं थी। औरंगजेब ने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध किए तथा राज्य का विस्तार भी किया किन्तु उसके बाद मुगल सत्ता का पतन प्रारम्भ हो गया। औरंगजेब के उत्तराधिकारी विलासी, अयोग्य एवं असमर्थ शासक सिद्ध हुए। अनेक प्रदेशों में राजा एवं सामंतों ने अपनी स्वतंत्र सत्तायें स्थापित कर लीं; दक्षिण में मराठे स्वतंत्र हो गए। नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण क्रमशः 1739 एवं 1757 ई. में हुए, जिसमें मुगल साम्राज्य की कमर टूट गयी। कालांतर में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई में शाह आलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना लिया। जहाँदारशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में गिद्धों के नीड़ों में उल्लू रहने लगे और बुलबुलों का स्थान कागों ने ले लिया। वेश्याओं, तबलचियों एवं सारंगी वादकों का राज्य-कार्य में दखल होने लगा और शासन-व्यवस्था निरंतर कमजोर होती गयी।

(2) सामाजिक परिस्थितियाँ—रीतिकाल पर 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। समाज विशृंखलित हो रहा था, नैतिकता की ओर न राजा ध्यान देता था, न प्रजा ही नैतिक नियमों का पालन करती थी। सामन्तवाद का बोलबाला होने से समाज में सामन्तशाही के दोष आ गए थे। सामान्य जनता कष्टों और अभावों से घिरी हुई थी। सामंत और अमीर-उमरा विलास के उपकरणों की खोज में लगे रहते थे। सुरा और सुन्दरी में डूबे हुए विलासीजन काम-कला की शिक्षा को ही सबसे बड़ी उपलब्धि मानते थे। सुन्दर लड़कियों का अपहरण करवा लेना, वेश्याओं को सम्मान देना एवं मनोरंजन के अनेक घटिया साधनों में लीन रहना तत्कालीन समाज की गिरी हुई दशा को सूचित करता है। जनसाधारण में अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ व्याप्त थीं। जनता प्रायः अशिक्षित थी तथा बाल-विवाह प्रचलित थे। धनी सामंत वर्ग के लोग गरीबों पर मनमाने अत्याचार करते थे। बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी तथा परिवारों में अशांति रहती थी। कला-कौशल एवं व्यापार से शासक वर्ग का संरक्षण अब प्रायः समाप्त होने लगा था। अभिजात्य संस्कृति एवं उच्च नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चला था।

(3) धार्मिक परिस्थितियाँ—अकबर एवं जहाँगीर की उदार धार्मिक नीतियों के कारण हिन्दू और मुसलमानों में जो निकटता आयी थी वह औरंगजेब जैसे धर्मान्ध एवं कट्टर शासक के राज्य में समाप्त हो गयी थी। हिन्दी क्षेत्र में वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव था किन्तु महंत एवं पीठाधिकारी लोभवश राजाओं एवं सामंतों को गुरुदीक्षा देकर भौतिक सुविधाएँ प्राप्त करने की ओर उन्मुख हो चुके थे। राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं को भक्ति समझा जाने लगा था तथा मंदिरों में भी नाच-गाने के आयोजन भक्ति के नाम पर होने लगे थे। इस्लाम धर्म में रूढ़िवादिता बढ़ गयी थी। कुरान को याद कर लेने एवं नमाज पढ़ने को ही धर्म समझा जाने लगा था। केवल बाह्याचरण को ही धर्म माना जाता था, नैतिक मूल्यों की ओर ध्यान देने का किसी को अवकाश

न था। लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए भी मंदिरों-मजारों पर जाने लगे थे। मंदिर-मठों में धर्म के नाम पर विलास-क्रीड़ाएँ होने लगी थीं। स्थूल ऐन्द्रिकता एवं कामुकता की पूर्ति धर्म की आड़ में की जाती थी। धर्म के उदात्त रूप का इस काल में अभाव था और नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गयी थी।

(4) साहित्यिक परिस्थिति—साहित्य और कला की दृष्टि से रीतिकाल में पर्याप्त प्रगति हुई। इस काल में अलंकरण, कलात्मकता की प्रधानता प्रत्येक क्षेत्र में थी। कवियों और कलाकारों को राजदरबारों में प्रश्रय देकर अच्छी वृत्ति दी जाती थी तथा उनकी गणना समाज के प्रतिष्ठित लोगों में होती थी। दरबारी कवि होने के कारण इस काल में आश्रयदाताओं की प्रशंसा एवं शौर्य के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रमुखता प्राप्त कर चुके थे। कवियों का ध्यान जनसाधारण की समस्याओं को चित्रित करने की ओर नहीं गया, परिणामस्वरूप कविता उच्च वर्ग की भावनाओं के अनुरूप शृंगार एवं विलास के पंक में फँस गयी। इस काल में काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा प्रतिष्ठित हो गयी थी तथा सभी कवि इसी भाषा में काव्य-रचना करते थे। राजकाज की भाषा फारसी थी, जिसमें अलंकरण की प्रवृत्ति प्रधान थी। शाहजहाँ को 'कसीदे' (प्रशंसापरक गीत) सुनने का शौक था। अतः उसके दरबार में प्रायः ऐसे कवि थे जो कसीदे सुनाया करते थे। उसी के अनुकरण पर अन्य देशी राजा-नवाबों के राज्य में भी प्रशंसापरक काव्य रचने की प्रवृत्ति पनपती गयी।

रीतिकाल के कवि अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए काव्य रचना करते थे। वे कवि दंगलों के आयोजकों को अपनी बुद्धि का लोहा मनवाने हेतु चमत्कारपूर्ण काव्य रचना करने में ही कवि-कर्म की सफलता समझते थे। काव्यशास्त्र की जानकारी को प्रदर्शित करना भी उनका एक उद्देश्य था। वे कवि और आचार्य दोनों ही बनना चाहते थे, यही कारण है कि उन्होंने लक्षण-ग्रन्थों की रचना प्रचुर परिमाण में की है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने रीतिकाल के कवियों के कार्य पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, "रीतिकाल के कवियों ने तो मानों राजा-महाराजाओं की काम-वासना उत्तेजित करने के लिए ही काव्य-सृजन किया है। एक प्रकार के 'कविराज' तो रईसों के मुख में मकरध्वज झोंकते हैं, दूसरे प्रकार के 'कविराज' कान में मकरध्वज रस की पिचकारी देते हैं।" रीतिकालीन कवि वासना के रस में आकंठ डूबकर, समाज को ऐसा काव्य प्रदान कर रहे थे जो शृंगार के संकुचित दायरे में घिरा हुआ था। हाव-भाव, हेला, नायिका भेद और अलंकार निरूपण में ही वे अपनी बुद्धि लगा रहे थे। उनका शास्त्र-ज्ञान भी नवीनता से युक्त न होकर संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुकरण मात्र था।